वर्गांक ....

आस्था की ज्योति बुझने न पाये

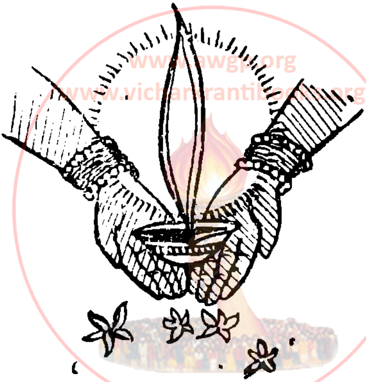

— श्रीराम शर्मा आचार्य

: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

YUG NIRMAN YOJANA, GAYATRI TAPOBHUMI
MATHURA, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org

: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalay, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India
E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org

आस्था की ज्योति बुझने न पाये

धर्म अध्यात्म का परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने और धार्मिक जीवन जीने से परलोक में सद्गति प्राप्त होती है और आत्मा को शान्ति मिलती है। इतना ही नहीं वरन् व्यवहारिक जीवन में भी उसकी बड़ी उपयोगिता है, व्यक्ति को सुखी और समाज को समुन्नत बनाने में अध्यात्म दर्शन की कम उपयोगिता नहीं है।

कर्मफल, संयम, सदाचार, परोपकार, प्रेम, उदारता, कर्तव्यपालन जैसे अनेक विश्वासों का सौरमण्डल धर्मरूपी सूर्य के इर्द-गिर्द घूमता है। अध्यात्म सर्वथा एकाकी नहीं है। आस्तिकता का मतलब, मात्र ईश्वर की पूजा-पत्री कर देना ही नहीं वरन् यह भी है कि इश्वर की इच्छा और विधि व्यवस्था को समझें और तदनुकूल अपने जीवन की रीति-नीति ढालने के लिए प्रयत्न करें। स्वर्ग, नरक और परलोक की मान्यता मानवी अन्तःकरण को देर-सवेर से कर्मफल मिलने का विश्वास दिलाती है। इससे आस्थावान व्यक्ति पुण्य का श्रेय या पाप का दण्ड तत्काल न मिलने पर भी उस ओर से निश्चिन्त नहीं हो जाता वरन् यह विश्वास रखे रहता है कि आज नहीं तो कल—यहाँ नहीं तो वहाँ भले-बुरे कर्मों का फल मिलकर ही रहेगा। इस आस्था को बनाये रहना मनुष्य के चिन्तन और कर्तृत्व में अवांछनीयता न बढ़ने देने के लिए एक अति प्रभावशाली अंकुश है। अध्यात्म की मान्यता व्यक्ति को सदाचरण और आदर्शवादी कर्तव्य पालन के लिए घाटा उठाने तक के लिए प्रोत्साहित करती है। यही वे प्रवृत्तियां हैं जिन पर व्यक्ति का स्तर और समाज का गठन सुव्यवस्थित और समुन्नत रखा जा सकता है।

उत्कृष्ट आदर्शों के प्रति यदि आस्थायें लड़खड़ाने लगें तो हर व्यक्ति स्वार्थपरायण होने की दिशा में अधिकाधिक तेजी के साथ बढ़ेगा। फलतः पारस्परिक स्नेह सद्भाव की—सहयोग और उदारता की उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त हो जायेगा जिनमें मनुष्य को कुछ त्याग करना पड़ता है और कष्ट उठाना पड़ता है।

समाज का ऋण हमारे ऊपर है, उसे चुकाने के लिए हमें समाज सेवा के अनुदान प्रस्तुत करने चाहिए। माता-पिता तथा गुरुजनों की सहायता से

हम पले, बड़े हुये तथा स्वावलम्बी बने हैं. इस पितृ ऋण को चुकाने के लिए हमें तत्पर रहना चाहिए। पति-पत्नी में से किसी के अरुचिकर हो जाने पर भी उसकी पिछली सद्भावना के लिए ऋणी रहने तथा निवाहने को तत्पर रहना चाहिए। सब में अपनी जैसी आत्मा समझकर न्याय और ईमानदारी पर दृढ़ रहना चाहिए। ये शिक्षायें धर्म ही दे सकता है। स्वार्थ नियन्त्रण और परमार्थ उत्साह की प्रेरणा अध्यात्म आदर्शों को अपनाने से ही मिल सकती है।

यदि इन आधारों को अस्त-व्यस्त कर दिया जाय तो मनुष्य जाति को ऐसी क्षति उठानी पड़ेगी जिसकी कभी भी पूर्ति न हो सके। आस्थायें बड़ी कठिनाई से बनती और जमती हैं। उन्हें उखाड़ देना सरल है। पेड़ को छायादार होने में लम्बी साधना करनी पड़ती है पर यदि उखाड़ना हो तो कुछ घण्टे की काट-छाँट ही पर्याप्त है। धार्मिकता को कल्याणकारी वृक्ष बोने उगाने और बढ़ाने में लाखों वर्ष लगे हैं। अनास्था का प्रतिपादन करके उसे उखाड़ देना कुछ बहुत कठिन नहीं है। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि उसे दुबारा लगाया जाना सम्भव न होगा। विश्वासी को अविश्वासी बनाने के उपरान्त फिर दुबारा उसी स्थान पर लौटाकर ले आना कठिन है।

तर्क एक अन्धा तीर है। उसे किसी भी दिशा में छोड़ा जा सकता है। कई वकील लोग अपने मुवक्किल के पक्ष में धुआंधार दलील देते और बहस करते हैं। उनकी तर्कशैली प्रखर होती है। वस्तुस्थिति जानने पर वे जोर नहीं देते। वादी या प्रतिवादी जो भी सामने आ जाय तो उसी के पक्ष में तर्क दलील या प्रमाण उपस्थित करते हैं। मस्तिष्क ऐसा ही वे पेंदी का लोटा है। वह रुचि के पीछे चलता है। जो भी बात पसन्द हो उसी के समर्थन में बहुत कुछ कहा जा सकता है। दलील भी दी जा सकती है और प्रमाण उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। धर्म एवं अध्यात्म के विरुद्ध बहुत कुछ कह सकना—कुछ बहुत कठिन नहीं है। तेज दिमाग के लिए यह बाये हाथ का खेल है।

देखना यह है कि क्या अनास्था उत्पन्न करने से व्यक्ति या समाज को

कुछ लाभ मिलेगा ? इस दिशा में जितना अधिक चिन्तन किया जाय उतना ही स्पष्ट होता जायेगा कि उसमें इसकी तुलना में हानि अधिक है ।

आस्तिकता मात्र पूजापाठ तक सीमित नहीं हैं उसके शाखा पल्लव सदाचार, कर्तव्य पालन और उदार व्यवहार तक फैले हुए हैं । जड़ के उखाड़ने से वह सभी उखड़ जायेंगे । क्योंकि भौतिकवादी दर्शन में स्वार्थ साधन ही मुख्य है । मांसाहार के पक्ष में यही दलील है कि स्वादिष्ट भोजन के अपने लाभ के लिए दूसरे को प्राण देने का भयानक कष्ट सहना पड़ता है तो उसकी हम चिन्ता क्यों करें ? स्वार्थ प्रधान हो गया तो दूसरों की सुविधा असुविधा अथवा न्याय अन्याय की बात क्यों सोची जायेगी ?

अनास्था का जितना विस्तार हो रहा है उसी अनुपात से आदर्शवादिता का सारा ढाँचा लड़खड़ाने लगा है । जब ईश्वर नहीं, धर्म नहीं, परलोक नहीं, कर्मफल नहीं, आत्मा नहीं तो फिर कर्तव्यपालनभी नहीं, स्वार्थों पर नियंत्रण भी नहीं, आदर्शों के झमेले में पड़कर स्वयं असुविधा उठाने की भी आवश्यकता नहीं । यह 'नहीं' व्यक्ति की पशुता को बढ़ायेगी और समाज के मूलभूत आधार-उदार व्यवहार का अन्त करेगी । जैसे-जैसे अनास्था परिव्याप्त और प्रबल होती जायेगी वैसे-वैसे उच्छृङ्खल आचरण, सिद्धान्त हीन जीवन और अपराधी प्रवृत्तियों के उद्भव को आँधी, तूफान की तरह बढ़ता हुआ देखा जा सकेगा । ऐसा समाज किस के लिए ? कितना ? किस प्रकार सुविधाजनक होगा उसकी बहुत कुछ झाँकी इन दिनों की परिस्थितियों में भी जहाँ-तहाँ की जा सकती है ।

इग्लैंड के प्रख्यात पत्र 'स्पेक्टेटर' में कुछ समय पूर्व एक लेख उस देश की दयनीय दशा की विवेचना के संदर्भ में छपा था संतान की ओर से उपेक्षित इन असमर्थ व्यक्तियों को उस संतान का रत्ती भर भी सहयोग नहीं मिलता, जिनके लालन-पालन और स्वावलम्बन में उन्होंने भावनापूर्वक उदार सेवा की थी । लेखक ने इन दुखियों की मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखा है—इस देश के अधिकांश वृद्धजन अपनी असमर्थ स्थिति में सन्तान की रत्ती भर भी सेवा सहानुभूति नहीं पाते तो वह करुण विलाप करते हैं

कि हे भगवान किसी तरह मौत आ जाय तो चैन मिले । पर उनकी पुकार कोई भी नहीं सुनता । दुखियारे वृद्धों का यह वर्ग द्रुतगति से बढ़ता ही जाता है ।

कोरोनर (लन्दन) के डॉक्टर मिलन को पिछले दिनों ७०० दुर्घटना ग्रस्त मृत शवों का विश्लेषण करना पड़ा उनमें एक तिहाई आत्महत्या के कारण मरे थे इन आत्म-हत्या वालों में अधिकांश ऐसे बूढे लोग थे, जिन्हें बिना किसी सहायता के जीवनयापन भारी पड़ रहा था और उनने इस तरह घिस-घिसकर मरने की अपेक्षा नींद की अधिक गोलियां खाकर मरना अधिक अच्छा समझा । इन आत्महत्या करने वालों में दो-चार को छोड़कर सभी सन्तान वाले थे । किन्तु वयस्क होने के बाद सन्तान ने उनकी ओर मुँह मोड़ कर भी नहीं देखा था ।

बूढे अभिभावकों की ही यह दुर्गति हो रही हो सो बात नहीं । पाश्चात्य जगत में बच्चों की भी एक विपत्ति में गणना होने लगी है । माँ-बाप उन्हें अभिशाप मानते हैं और बच्चे सहमे सिसके किसी तरह अनाथालय की तरह अपनी अल्पवयस्कता की अवधि पूरी करते हैं । पति-पत्नी मिलन जब विशुद्ध रूप से कामुक प्रयोजन के लिए ही रहे तो उसी की प्रधानता रहनी चाहिए । बच्चे जब पेट में से आते हैं या जन्म लेते हैं तो अपनी माँ को पिताजी की इच्छा पूर्ति में उतनी उपयुक्त नहीं रहने देते । यह पिता के लिए भी क्रोध की बात है और माता के लिए भी । प्रजनन–निरोध कृत्य वहाँ का अति लोकप्रिय प्रचलन फिर भी कभी-कभी बच्चों की विपत्ति सिर पर आ टपकती है । उन जन्मे हुए बच्चों से कब किस प्रकार पीछा छूटे यह चिन्ता अभिभावकों को रहती है ।

सौन्दर्य को हानि न पहुँचे इसलिए बच्चों को माता का नहीं बोतल का दूध पीना पड़ता है । अधिकांश बच्चे पालन गृहों में पलते हैं । पैसा दे दिया। जंजाल से छुट्टी । घूमने फिरने हँसने खेलने की सुविधा । जैसे ही बच्चा कमाऊ हुआ कि माता-पिता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता । पशु-पक्षियों में भी तो यही प्रथा है । उड़ने चरने लायक न हों तभी तक माता-पिता उनकी

सहायता करते हैं। बाप तो उस स्थिति में भी ध्यान नहीं देता। प्रकृति ने बच्चों की जीवन रक्षा के लिए यदि माता के हृदय में स्वाभाविक ममता उत्पन्न न की होती तो अनास्थावान मातायें भी बच्चों की साज-सँभाल करने में रुचि न लेतीं और माता की निगाह बदलने पर बाप तो उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखता।

अनास्थावान मनोभूमि वाले माता-पिता के दृष्टिकोण का बच्चों के प्रति बेरुखा हो जाना स्वाभाविक है। और ऐसी दशा में यदि वे बुढ़ापे में अभिभावकों की कोई सहायता नहीं करते और उन्हें कुत्ते की मौत मरने के लिए छोड़ देते हैं तो उन्हें कुछ बहुत दोष भी नहीं दिया जा सकता। आखिर वे भी तो बूढ़े होंगे और उन्हें अपने बच्चों से भी तो कोई आशा नहीं है। वे स्वयं भी तो इस तरह का नीरस बुढ़ापा बिताने की बात ही सोचते हैं। ऐसी दशा में मौत के दिन गिनने वाले बूढ़े माता-पिता की वे उपेक्षा अवज्ञा करते हैं तो उन्हें दोष भी कैसे दिया जाय।

अभिभावकों और बच्चों के बीच आदर्शहीनता ने दीवार खड़ी कर दी है। उससे भी बड़ी विडम्बना पति-पत्नी के बीच खड़ी है। वेश्या जिस तरह शरीर सौन्दर्य से लेकर वाक् जाल के रस्सों से भडुए को बांधे रहने की चालचलती रहती है वही नीति औसत पत्नी को अपने पति के साथ बरतनी पड़ती है। इस तथ्य से वह परिचितहै। कामुकता की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य है। जब तक वह प्रयोजन खूबसूरती से सधेगा तभी तक विवाह चलेगा। आर्थिक सुविधा का दूसरा पहलू भी विवाह के साथ जुड़ गया है। इन स्वार्थों की शतरंज ही दाम्पत्य जीवन है। जो बाजी हार जाता है उसे भागना पड़ता है। एक घर में रहते हुए भी—एक बिस्तर पर सोते हुए भी—दोनों एक-दूसरे को आस्तीन का सांप समझते रहते हैं और बारीकी से यह पता लगाते रहते हैं कि साथी के द्वारा उसके शरीर में डंक चुभोये जाने में कितनी देर है। प्रेम पत्र और लम्बे चौड़े वायदे तथा हाव-भावों का आकर्षण वहां एक 'टेकनिक' मात्र रह गये हैं। उस विडम्बना की निस्सारता समझते हुए भी बन्धन में बंधने से पूर्व जो दौर उनका चलता था विवाह के बाद भी चलाते रहना पड़ता है। ताकि साथी को भ्रम में रखा जा सके।

साथ ही दूसरा घोंसला बनाने दूसरी चिड़िया फँसाने का भी अपना-अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं ।

इन दाम्पत्य जीवनों का जो ढाँचा खड़ा रहता है और जिस प्रकार अन्त होता है उससे निराशा और दुख ही हाथ लगता है । बाहर आदमी कैसी तड़क-भड़क बनाये फिरे, पर पारिवारिक जीवन में भी विश्वास, निष्ठा आत्मीयता का अभाव रहने पर मनुष्य अपने आपको सर्वथा एकाकी और असहाय अनुभव करता रहता है । न कोई उसका, न वह किसी का. वास्तविकता सामने रहतीहै । छल और दिखावे का ताना-बाना यदि स्त्री बच्चों के साथ भी बुनते रहना पड़े तो मन कितना भारी, कितना उदास और कितना क्षुब्ध और कितना उखड़ा-उखड़ा रह सकता है, इसकी कल्पना करने में भी कष्ट होता है । फिर जिन लोगों को सारा जीवन इसी वातावरण से भरे पारिवारिक जीवन में बिताना पड़ता है उनकी क्या गति होगी उसे अनास्थावान भौतिकवादी पच्छिम के देशों में जाकर प्रत्यक्ष ही देखना चाहिए ।

बाहरी ठाठ-बाट, शौक-मौज के मन-बहलाव से क्या बनता है, आन्तरिक निराशा हर घड़ी खाती रहती है । नशे पीकर गम गलत करते रहते हैं और आन्तरिक उद्वेगों की आग में मरघट की चिता बनकर जलतेरहते हैं ।

इंग्लैण्ड के डाक्टरी पत्र 'ब्रिटिश मेडीकल जनरल' में उस देश में बढ़ते हुए पागलपन का विस्तृत विवरण छपा है । उसमें लिखा है—इस देश में पागलों, अर्धविक्षिप्तों और सनकियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है । अस्पताल में जितने रोगी भरती होते हैं, उनमें से प्रायः आधे मानसिक रोगों से पीढ़ित होते हैं । गत पाँच वर्षों में यह संख्या प्रायः दस गुनी हो गई है ।

नींद की गोलियाँ खाये बिना किन्हीं बिरले को ही सोना नसीब होता है । मानसिक तनाव से उत्पन्न अनिद्रा वहां का एक सभ्य रोग है । शराब पिये बिना चैन नहीं । आखिर भीतरी उद्वेग को दबाने के लिए नशे के अतिरिक्त और किसका सहारा लिया जाय ?

ईश्वर से, धर्म से, बच्चों पर से, स्त्री से, अभिभावकों से, समाज से, अपने आप पर से विश्वास खोकर अनास्थावान व्यक्ति सब कुछ खोया-खोया

ही अनुभव करता है। जब आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं, मरणोत्तर जीवनकी आशा नहीं और शरीर के साथ ही अपने अस्तित्व का अन्त होने वाला है तो भी थके हारे, बूढ़े, घिसे व्यक्ति की आंखो में आशा की चमक कहां से आ सकती है ? जवानी में भी मनुष्य जो कुछ देखता है सब कुछ निरर्थक, निरुद्देश्य, नीरस पाता है। ऐसी दशा में वह निरर्थकतावादी बन जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? हिप्पीवाद इसी नीरस निरर्थक जीवन की निरंकुश अभिव्यक्ति है। अभी इसका आरम्भ है। अनास्था जितनी ही प्रखर होगी यह क्रम उतना ही उग्र होता चला जायेगा। इसका अन्त कहाँ होगा—यह सोचते हुए भी सिर चकराता है। हो सकता है—इसी आग में झुलस कर सभ्यता और संस्कृति का अस्तित्व भी समाप्त हो जाय।

धर्म-विरोधी विचारधारा के प्रचारक और प्रख्यात दार्शनिक लार्ड वेवरिज ने मृत्यु से कुछ समय पूर्व अपने मित्र इटली के प्रोफेसर वलडी को एक मार्मिक पत्र लिखा। उसमें उनने कहा —"धर्म ध्वजियों के अनाचार से क्षुब्ध होकर मैंने धर्म विरोधी प्रतिपादन किया था पर उस आवेश में यह ध्यान न रहा कि —अनास्था फैल जाने पर लोग साधारण मानवीय कर्तव्य की भी उपेक्षा करने पर उतारू हो जायेंगे। मेरा प्रयत्न वास्तविकता प्रकट करने का था, इस अंश में वह प्रतिपादन अभी भी सही है कि धर्म को जिस रूप में इन दिनों समझा जा रहा है वह भ्रान्त है। फिर भी मूल धर्म प्रवृत्ति का उन्मूलन उचित नहीं। उसके कारण उत्पन्न नैतिक उच्छृङ्खलता व्यक्ति और समाज के लिए घातक ही सिद्ध होती है। अनास्थावान व्यक्ति की गति-विधियों को देखकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वे धर्म व्यवसायियों एवं धर्म भीरुओं की अपेक्षा कम नहीं अधिक बुरे सिद्ध हो रहे हैं।"

युग की यह परम आवश्यकता है कि धर्म श्रद्धा को हर स्थिति में जीवन्त रखा जाय। मानवी आस्थाओं के सुदृढ़ बने रहने का उससे ही सम्बल मिलेगा। साथ ही उस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि धर्म के नाम पर अंधश्रद्धा को किसी भी हालत में प्रश्रय न मिलें। इसके लिए विवेक दृष्टि का खुला रहना आवश्यक है।

क्र० २०६, प्र०-युग निर्माण योजना, मु०-युग निर्माण प्रेस मथुरा। मूल्य ४० पैसे